Chapter-5

—::पंचम परिच्छेद::—

—::कला पक्ष::—

अः— साखी से तात्पर्य :—

संतों के काव्य रुपों में साखियों का स्थान प्रमुख है और उन्होंने ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये साखियों को ही माध्यम बनाया है। संतों के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखी ही है —

साखी आंखी ग्यान की समुझि देखु मन माहिं।
बिन साखी संसार का झगरा छूटत नाहिं।। 1:—

वैसे साखी शब्द का प्रयोग निम्न अर्थो में भी हुआ है—

कबीर मारग अगम है सब मुनि—जन बैठे थाकि।
तहॉं कबीरा चलि गया, गहि सद्गुरु की साखि।। 2:—

दादू दयाल एवं अन्य संतों ने भी साखी का प्रयोग इसी अर्थ में किया है ।

1:— कबीर बीजक, हरक संस्करण, पृ. 124, साखी—353 कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति

2:— कबीर ग्रंथावली, साखी—301

बः— कबीर, दादू दयाल एवं अखा के काव्य का प्रयोजन—

कबीर ,दादू दयाल एवं अखा एक उच्च्य कोटि के पहुँचे हुये संत थे । उनके काव्य का प्रयोजन विशुद्ध शास्त्रीय ढंग से या किसी सामाजिक कवि की भाँति काव्य रचना करना नहीं था। काव्य उनके लिये साध्य न होकर ईश्वर—प्राप्ति का भगवत्—प्रचार का साधन था । काव्य उनकी निजि अनुभूति की वाणी है जिसे उन्होंने सीधी एवं सरल भाषा में व्यक्त किया है । पांडित्य प्रदर्शन से वे दूर रहे हैं ।

कबीर जी ने निम्न साखियों में अपने काव्य का उद्देश्य स्पष्ट किया है:

तुम जिनि जानौ गीत है , यहु निज ब्रह्म विचार रे।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे।। 1—
*　　　*　　　*
हरि जी यहै विचारिया, साषी कहो कबीर।
भौसागर मैं जीव है, जे कोइ पकड़ै तीर।। 2—

संतों के साहित्य का विश्लेषण एक विशुद्ध काव्यशास्त्रीय रसों या भावों में करना तब तक उचित नहीं होगा , जब तक कि हम यह समझ न लें कि

1:— कबीर ग्रंथावली, राग गौड़ी, पद—5, सं. बाबू श्यामसुंदर दास, का. ना. प्र. सभा

2:— वही, 34—उपदेश कौ अंग, साखी—1

उनका एक अलग जगत है , अलग मान्यता है । वह अलौकिक और आध्यात्मिक जगत जहाँ काव्य के लिये काव्य की रचना नहीं होती है । उस साहित्य की अलग परंपरा, अलग रस है । इसलिये उनके काव्य में लौकिक दृष्टि से काव्यत्व आ गया तो ठीक , अगर नहीं आया तो कोई परवाह नहीं । भक्तों का आलंबन कोई लौकिक नहीं है , जिसके आश्रय से रस निष्पत्ति की संभावना की जा सकती है । सत्य तो यह है कि उदात्त श्रृंगार के क्षेत्र में गृहित होने वाला रति जैसा स्थाई भाव तथा उसके विप्रलम्भ और संयोग श्रृंगार के पक्ष में न ग्रहण कर उन्नयनी भूत भावोद्दीपित के पक्ष में ग्रहण करते हैं ।

एक भक्त के रुप में कवि अपने अनन्य प्रियतम , साक्षात् परमात्मा से मिलने के लिए आतुर है । उसके हृदय में मिलन की आतुरता और उद्विग्नता एक ऐसे आध्यात्मिक मिलन और अविरल संयोग के रुप में परिणत हो जाती है, जहाँ साधक और साध्य , भक्त और भगवान मिलकर एकाकार हो जाते है ।

डॉ. वासुदेव शर्मा दादू दयाल के काव्य प्रयोजन के संबंध में कहते हैं —" लेकिन इस संबंध में इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि दादू एवं संतों की वाणियों में काव्य चाहे जितना भी उत्कृष्ट क्यों न हो ' भणिति' उनका लक्ष्य नहीं है । कविता के लिये कविता करना उन्हें कदापि ग्राह्य नहीं हैं । उनकी वाणियों का स्वर और वक्तव्य आदि से अंत तक शुद्ध भक्ति का है । इसी केन्द्र के इर्द—गीर्द उनके अन्य रुप स्वयमेव —प्रकाशित हो उठते हैं । " 1—

डॉ. राजेन्द्र भटनागर ने कबीर काव्य के प्रयोजन के संबंध में कहा है "कबीर पहले संत थे , बाद में कुछ और । उनके पास व्यापक अनुभव था , गहन चिंतन और अद्भुद तार्किक शक्ति । वह ज्ञानी थे । उनका ज्ञान पुस्तकाधृत नहीं था। प्रचुर और प्रगाढ़ परिकल्पना के वह अनुपम धनी थे ।

1:— संत कबीर दादू और उनका पथ, डॉ. वासुदेव शर्मा, पृ. 187, अमर प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं. 1978 ई.

निश्चित ही उनका उद्देश्य कविता करना नहीं था और न ही साहित्य सृजनोन्मुखी थे ।" 1–

"अखा के काव्य प्रयोजन भी रसात्मक कविता रचने का न था , किन्तु ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की उनकी विचारधारा प्रचलित रुढ़ि अनुसार कविता द्वारा सहज भाषा में समाज समक्ष रखना था। यह प्रधान हेतु सफल रुप से फलीभूत होते हुये भी उसकी भाषा में नैसर्गिक रुप से आये कविता तत्व हम छोड नही सकते। कहीं कही तो जो तत्वज्ञान और कविता दूध में शक्कर मिले उसी की भाँति एक दूसरे में एकरस हो रहे है ।" 2–

द– भाषा::–

संतों की भाषा को किसी भी सीमा में बाँधना कठिन है , क्योंकि वे किसी एक स्थान पर टिकते नही थे और जहाँ भी जाते थे वहाँ के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते थे । अतः उनकी रचनाओं में अनेक भाषाओं और बोलियों का प्रयोग दिखाई देता है । आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में संतों की भाषा को सधुक्कडी भाषा कहा है । अर्थात साधुओं की मिश्र भाषा , जिसमें किसी विशेष भाषा और विशेष प्रदेश की सीमा न हो।

संतों की भाषा मात्र एक सामित पढ़े–लिखे वर्ग के लिये नहीं है बल्कि व्यापक जन चेतना को अभिव्यक्ति देने वाला काव्य है । तीनों संतों की भाषा

1:– कबीर, पृ. 64, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, संस्करण 1984 ई.

2:– साहित्यकार अखो में संकलित, प्रो. भाईलाल प्रभाशंकर कोठारी का लेख, वेदान्ती कवि अखा, पृ. 158, प्रेमानन्द साहित्य सभा बड़ौदा द्वारा प्रकाशित

समाज के सभी वर्ग के लिये सुलभ है । उनकी रचनायें समझने के लिये शास्त्र–ज्ञान की आवश्यकता नहीं है ।

कबीर जी ने तो अक्कड़ तथा निर्भीक स्वर में अपना भाषा विषयक दृष्टिकोंण स्पष्ट कर दिया :–

संसकीरत है कूपजल भाषा बहता नीर।। 1–

अखा जी ने भी कहा हैं :–

भाषने शुं वळगे भूर? जे रणमां जीते ते शूर। 2–

आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस दिव्यानुभुति को देव –गिरा भी कहने में असमर्थता अनुभव करती है , उसी अनुभूति को इन संतों की टकसाली भाषा ने सहजता के साथ अभिव्यक्त किया है । जनता की भाषा में लिखा गया संत काव्य , सरलता, सहजता, सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता आदि गुणों की दृष्टि से अद्वितीय है । संतों की भाषा ओज, ,माधुर्य प्रसाद गुण संपन्न है । उसमें नाद सौंन्दर्य भी है , संगीतात्मकता भी है और रस का भी उसमें अभाव नहीं है ।

डॉ. विजयेंद्र स्नातक ने उचित ही कहा है ,

"सच तो यह है कि कबीर का आर्दशलोक चाहे कितना व्यापक , ऊँचा और द्वन्द्वतीत क्यों न हो , उनकी सृजन शक्ति धरती से जुड़ी हुई है उनकी वाणी 'सुरसरि' ही नही 'हिमगिरि' और मेघ की तरह सबका हित चाहती रही है । कबीर ने जन भाषा को राष्ट्र भाषा की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है । अतः

1:– सद्‌गुरु कबीर साहब का साखी ग्रंथ, भाषा कौ अंग, साखी–1, पृ. 379

2:– छप्पा, 29–भाषा अंग, छप्पा–247

जिस प्रकार शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर कबीर काव्य की समीक्षा आंशिक और अधूरी है , उसी प्रकार संस्कृत भाषा और उसकी अभिव्यक्ति के कसौटी पर कबीर के अभिव्यक्ति पक्ष की समीक्षा भी समीचीन नही है । कारण यह है कि जिस समाज में रहकर संत रचनाकार अपने भाव विचारों को वाणीबद्ध करने के लिये प्रेरित हो रहे थे और जिनके साथ वे संवाद कर रहे थे , वह उनके आस पास का ही समाज था । उसके लिये उन्होंने न तो किसी परिष्कृत और बिचौलिया भाषा की आवश्यकता थी और न छन्द प्रयोग के कौशल की' । 1

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर जी की भाषा संबंध में कहा है –''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात का उन्होंने जिस रुप में प्रकट करना चाहा है उसी रुप में भाषा से कहलवा लिया –बन गया तो सीधे –सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार–सी नज़र आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं कि इस लापरवा, फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाही कर सके । और अकह कहानी को रुप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है । '' 2–

डॉ. पारस नाथ तिवारी का भी कथन है ,'' कबीर की भाषा यद्यपि सादी, अलंकार विहीन और कहीं कहीं अनगढ़ अपरिष्कृत भी है , किन्तु उसमें अभिव्यक्ति की आश्चर्य जनक क्षमता है । '' 3–

1:– कबीर वचनामृत, सं. डॉ. विजयेंद्र स्नातक और डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र, नेशनल प. हा. द्वारा प्रका., नई दिल्ली–110002, सं. 1984 ई,

2:– कबीर, पृ. 184–185, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना द्वारा प्रका. संस्करण पॉचवां–1987

3:– कबीर वाणी, पृ. 124, राका. प्र. इलाहाबाद, सं. 1991

उपर्युक्त मत संत दादू दयाल एवं अखा जी पर भी उचित है । दादू जी की भाषा संबंध में भी हम कह सकते है कि भाषा उनके स्वानुभवों को व्यक्त करने का साधन थी साध्य नहीं । वे भाषा की ऊपरी सजावट को महत्व नहीं देते थे और न उपयोगिता समझते थे । रविंद्र कुमार ने उचित ही कहा है– " दादू सौंद्धांतिक और रुढ़ पद योजना के कायल नहीं थे । उनसे जहॉ तक बन पड़ा है , आम जीवन के ताजा अनुभवों को उन्होंने जन सामान्य की आम भाषा में सहज स्वाभाविक ढ़ंग से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है । स्वभावतः आम भाषा के किसी भी शब्द , उक्ति और मुहावरे को अपनाने में उन्होंने संकोच नही किया है , पारंपरित काव्य भाषा के स्थान पर नये अनुभवों को अभिव्यक्ति करने वाली भाषा की तलाश करने वालों के लिये इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं होता । दादू इस दृष्टि से स्वतंत्र भी थे क्योंकि काव्य–रचना न उनकी जीविका का साधन था और न ही प्रयोजन । काव्य –रुढियों में बँधकर चलने की कोई भी विवशता उनके सामने नही थी । अतः बिना किसी बाधा के उन्होंने अपनी काव्य भाषा को नया संस्कार दिया । भाषा में ताजा जीवन के ताजा अनुभवों को संचारित करके उसे सुबोध और ग्राह्य बनाया तथा टेढ़ी बात को भी सीधे ढ़ंग से व्यक्त कर दिया । 1–

अखा जी की भाषा के संबंध में डॉ. रमण भाई पाठक ने कहा है –" अखा के छप्पा की भाषा को सपाट , बरछट और कठोर कहकर उपेक्षित किया

1:– दादू काव्य की सामाजिक प्रसंगिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.–93, संस्करण 1988 ई.

जाता है , किन्तु वास्तव में यह जन भाषा के निकट है । अखा ने अपने ' छप्पा' में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह कवि के स्वानुभव की भाषा है ।'' 1–

अन्य स्थान पर वे कहते हैं –'' गुजरात के मध्यकालीन कवियों की तुलना में अखा की विशेषता यह भी है कि उसे अपने समय की हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है । वांछित भाव और अपेक्षित काव्यानुसार भाष का उचित विनयोग करने की गहन सूझ अखा में अद्‌भुत है और इसलिये वे जितनी स्फूर्ति , मस्ती , ऋजुता, और कुनेह से गुजराती भाषा का प्रयोग कर सकता है उतनी ही सभानता , स्फुर्ति, ऋजुता, और कुनेह से हिन्दी का प्रयोग भी कर सकता है । 2–

कबीर जी की रचनाओं में व्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, राजस्थानी, खड़ीबोली, बिहारी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, सिन्धी, बंगाली, फारसी और अरबी भाषा के प्रयोग मिलते है । दादू दयाल की मुख्य भाषा राजस्थानी हिन्दी जान पड़ती है लेकिन राजस्थान के आस–पास के प्रान्तों की भाषा भी उनके काव्य में पाई जाती है जैसे दक्षिण की मराठी, गुजराती, सिंधी , उत्तर की पंजाबी , तथा पूर्वोत्तर एवं पूर्व क्रमशः खड़ी बोली , व्रज भाषा, संस्कृत ,फारसी आदि।

अखा जी की रचनाओं में हिन्दी गुजराती, व्रज भाषा , खड़ी बोली राजस्थानी, पंजाबी , अरबी, फारसी, संस्कृत, आदि भाषा के प्रयोग पाये जाते हैं।

1:– अखो एक स्वाध्याय, पृ. 240 , संत कवि श्री 'सागर' प्रकाशन द्वारा प्रकाशित, बड़ौदा , संस्करण 1976 ई.

2:– वही, पृ. 241

यहाँ कबीर ,दादू दयाल एवं अखा के कुछ उदाहरण देखे ।

गुजराती::— गुजराती भाषा का प्रयोग कबीर साहिब की तुलना में दादू दयाल की रचनाओं मे अधिक पाया जाता है । अखा जी की तो अधिकतर रचनायें गुजराती ही है । दादू दयाल जी ने जहाँ भी गुजराती भाषा का प्रयोग किया है वहाँ गुजराती का शुद्ध रुप है ।

कबीर— पिया मिलन की आस रहौं कब लौं खड़ी।
ऊँचे चढ़ि नहिं जाय, मने लज्जा भरी।। 1—

दादू— मार्हा नाथजी तारहौं नांव लिवाइ रे।
राम रतन रिदया मैं राषे, मार्हा वाल्हाजी विषियाथैं वारे।।
वाल्हा वाणी नै मांहि माहरै, चितवन ताहरौ चितराषे।
श्रावण नेत्र इंद्री ना गुण ,माहरा महिला मलते नांषे।। 2—

* * *

मार्हा रे वाल्हा नैं काजै हौं, रिदै जोइवानौ ध्यान धरौं।
आंकुल धाए प्रांत अन्होरौ, कुहुनै केहि परि करौ।।
संभारयौ आवे रे वाल्हा , वेलां येहौं जोइ ठरौं।
साथी जी साथैं धइने पेली तीरैं पारि तिरौं ।। 3—

1:— कबीर साहब की शब्दावली, भाग—4, राग मंगल, साखी—1, पृ. 1, बेलबीडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित

2:— दादू दयाल, 6—राग केदारौ, पद—1, सं. परशुराम चतुर्वेदी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं. 2030 वि.

3:— वही, पद—7

अखा—— सदगुरु—मारग सदा अलग, ज्यम पंखीने गत्य सळंग,
पग न पड़े ने पंथ कपाय, सदगुरु मार्ग उपटछलो जाय। 1—

खड़ी बोली::—

कबीर जी— जिन जिन हंसा गाहक बस्तु बिसाहिया।
कबीर पाया सब्द अमोल , बहुरि नहि आइआ।। 2—
* * *
पलटि कें रुप जब एक सों कीन्हिया।
मानहु तब भानु षोड़स उगाए।। 3—

दादू— खड़ी बोली का जहाँ भी प्रयोग हुआ है वहाँ उनही भाषा शुद्ध हिन्दी नहीं है । उर्दू के छाप स्पष्ट दिखाई देती है । इसके अलावा फारसी अथवा अरबी शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है :

अला तेरा जिकर फिकर करते है ।
आसिक मुस्ताक तेरे , तरसि तरसि मरते हैं ।।
तन सहीद मन सहीद , राती दिवस लरते हैं ।
म्यांन तेरा ध्यान तेरा, इसक आगि जरते हैं ।। 4—

1:— छप्पा, 26, आदोष अंग, छप्पा—225

2:— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग—4, पद—6, बे. प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सन् 1990 ई.

3:— वही, पद—16

4:— दादू दयाल, सं. परशुराम चतुर्वेदी, राग घनाश्री, पद—10, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

अखा— क्या तेरा किरतार ! कामानु !

मैं मता कोई और पाया !

चैन चरित्र सब है ज तेरे !

मै सो जूठा होउं ज साया ! 1—

ब्रज भाषा::—

कबीर::— लिख दियो सब्द अमोल, सोहंग सुहावना।

पूरन परम निधान ताहि बल जिता।। 2—

* * *

दीन्हों सुरति सुहाग पदारथ चारि को।

निस दिन ज्ञान विचार, शब्द निर्वार को। 3—

* * *

बनजारिन बिनती करै, सुन साजना।

नारियर लीन्हो हाथ ,संत सुन साजना।। 4—

दादू— तैं मन मोह्यौं मोर रे, रहि न सकौं हौं राम जी।। 5—

1:— झूलणा, पद—3

2:— कबीर साहेब की शब्दावली, भाग—4, पद—4, पृ. 9, बे. प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रका. सन् 1990 ई.

3:— वही, पृ. 10, पद—1

4:— वही, पद—11, पृ.—9

5:— दादू दयाल की बानी, भाग—2, राग गौड़ी, पद—9, बेलबीडियर प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

अखाः:— चार पंचक अरु चतुब्टय, एक प्रकृति मूलकी,
आपनो परिवार बढायो, भइ माता स्थलकी। 1—

अरबी फारसीः—

कबीरः— खुद बोलने को तहकीत करि ले,
हरदम हजूर जरुर है जी। 2—

* * *

छोड़ि नासूत मलकूत को पहुँचिआ,
बिस्तु की ठाकुरी दीख जाई। 3—

* * *

इस्क बिना नाहिं मिलिहै साहिब, केतो भेष बनावै।।
इस्क मासुक न छिपै छिपाये, केतो छिपै छिपावै।। 4—

दादू— दादू जी की कुछ साखियाँ विशुद्ध फारसी रुप में पाई जाती है ।
आसिक एक अलाह के , फारिक दुनिया दीन।
तारिक इस औजूद थैं, दादू याक अकीन।। 5—

1:— ब्रह्मलीला, पृ. 309

2:— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग—4, पद'4, पृ. 9, बे. प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रक. सन् 1990 ई.

3:— वही, राग कहरा, पद—2, पृ. 14

4:— वही, पृ.—23

5:— दादू दयाल, सं. परशुराम चतुर्वेदी, 3—विरह कौ अंग, साखी—6, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सृ. 2023 वि.

अरबाहे सिजदा कुनंद , औजूद रा चिकार ।
दादू नूर दादनी , आसिका दीदार ।। 1–

अखा– नगद माल उधारे पडयो, एम अखा जीव रडवडयो ।। 2–

* * *

कथा कीर्तन बहु करता फरे,
पण अखा हांसल ते लेखे सरे । 3–

* * *

भीस्त न दोजक दोउना चाहु । 4–

राजस्थानी::–

कबीर – गोकल नाइज बीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे ।
बहुतक दिन बिछुरे भये, तेरो औसेरि आवै मोहि रे ।। 5–

1:– वही, साखी–67

2:– छप्पा–535

3:– छप्पा–104

4:– संत प्रिया–87

5:– कबीर ग्रंथावली, राग गौड़ी, पद–5, सं. बाबू श्याम सुंदर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

दादू– वाल्हा हूँ थारी , तुँम्हारो नाथ।
तुम सूँ पहली प्रीतड़ि पूरिबेलो साथ ।।
वाल्हा मैं हूँ थारो औलसियौ रे ।
राखिस तूँनै रिदा मंझारि।। 1–

अखा::– मेरा धूरत मीत सलूना रे !
मैं पाया साथी –जूना रे ! 2–

य–उलटबाँसियाँ ::–

अपनी आध्यात्मिकता के गूढ़ या गोप्य भावों को अभिव्यक्त करने के लिये उलटबाँसियों अर्थात् उक्ति विपर्यय या विशेष प्रकार की उक्तियों का प्रयोग आध्यात्म –साधक परंपरा से करता आ रहा है । प्राकृतिक परिस्थितियों से विपरीत कहना ही इस प्रकार की शैली का उद्‌देश्य है । इस प्रकार का निरुपण प्रथम दृष्टि से तो असंभव सा प्रतीत होता है लेकिन जब आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो उसमें चमत्कारपूर्ण अर्थ निहित रहते है ।

वस्तुतः उलटबाँसी एक विशेष प्रकार की कथन भंगिमा है । विपर्यय भाव से अपने भाव को इस प्रकार कहना कि सम्बद्ध व्यक्तियों के अलावा अन्य किसी को कुछ नही समझ पड़ सके । दूसरे शब्दों में कहे तो अटपटी भाषा में गोप्य एवं गूढ़ भावों को अभिव्यक्ति करना ही उलटबाँसी कहा जा सकता है । श्री एच. एन . पटवारी का मानना है कि " कभी उलटबाँसियों का प्रयोग जान

1:– दादू दयाल की बानी, भाग–2, राग कान्हरा, पद–258, बे. प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रका. सन् 1984 ई.

2:– पकड़ी, 7, मेरा घरन मीत सलूणा रे !

बूझकर अर्थ को छिपाने के लिये हुआ करता है , जिससे कि अध्यात्म मार्ग के रहस्यों का पता अयोग्य व्यक्तियों या अपात्रों को न लगने पाये ।"1–

ऋग्वेद काल से उलटबाँसियों की परंपरा पाई जाती है । बाद में उपनिषदों में भी यह परंपरा देखी जा सकती है । बौद्ध –साहित्य में भी उलटबॉसियों का प्रयोग पाया जाता हैं । तत्पश्चात व्रजयानी सिद्ध तथा बाद में नाथ संप्रदाय के साहित्य में भी इस प्रकार की उक्तियों के प्रयोग मिलते है । कबीर जी नानक , दादू दयाल आदि संतों ने भी अपनी गूढ़ बातों को समझाने के लिये उलटबाँसियों का प्रयाग किया है ।

यहाँ ऋग्वेद के कुछ उदारण दृष्टव्य् है :

अपदिति प्रथमा पद्वतीनां ।

कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत । 2–

* * *

च'त्वारि श्रृंगात्रयोऽस्थ पादा द्वेशीर्षे हस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो बृपभो रोरनीति 3–

1:– सरस्वती संवाद, अप्रैल, 1961, पृ.–9, लेख श्री एच. एन. पटवारी, कबीर के काव्य रुपक और उलटबाँसियाँ

2:– बिना पैरों वाली पैरों से पहले आ जाती है , मित्रवरुण इस रहस्य को नहीं जानते ।

(ऋग्वेद, 2–1,153–3)

3:– इस बैल को चार सींग, तीन चरण, दो सिर और सात हाथ है , यह तीन प्रकार से बंधा हुआ उच्च शब्द करता है ।

(ऋग्वेद, 3–4–58–3)

इदं वपुर्निर्वचनं जनासश्चरन्ति यन्न द्यस्त स्थुराप : 1—

*　　　　*　　　　*

क इमे वो नृन्य माचिकेत वत्सो मातृजनयति सुधाभिः 2—

*　　　　*　　　　*

ईह बवीतु य ईयङ्ग, वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरे दुहते गावो अस्य वविं वसाना उदकं पदायुः। 3—

उपनिषदों के कुछ उदाहरण भी दृष्टव्य हैं :

अपाणिपादौ जवनौ ग्रहीता, पश्चत्यचक्षु स शणीत्यकर्णः 4—

*　　　　*　　　　*

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः। 5—

1:— है मनुष्यों ! यह वपु निर्वचन है क्योंकि जल स्थिर है और नदियाँ बहती है ।

(ऋग्वेद, 4—5—47—5)

2:— वन आदि में अन्तहित अग्नि को कौन जानता है ? पुत्र होकर भी अग्नि अपनी माताओं को हाव्य द्वारा जन्म देते हैं ।

(ऋग्वेद 1—1—7—15) सुत्र 95

3:— है विद्वान ! जो भी इस सुंदर एवं गतिशील पक्षी के भीतर निहित—रुप को जानता हो, वह बतलावे, उसकी इन्द्रियाँ अपने शिरोभाग द्वारा क्षीर प्रदान करती है और अपने चरणों से जल पिया करती है ।

(अथर्ववेद, 9—9—5)

4:— बिना हाथ पैरों का होते हुए भी वेगवान और ग्रहण करने वाला है । नेत्र हीन होकर भी देखता है और कर्ण रहित होने पर भी सुनता है।

(श्वेताश्तरोपनिषद, 3/19)

5:— अर्थात वह स्थित हुआ भी दूर जाता है और शयन करता भी हर ओर —

तदेजति तन्नेजति तद्दरे तुद्वान्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य उतसर्वस्यास्य वाहयतः ।। 1–

बौद्ध धर्म में भी इस प्रकार की उलटबॉसियों का प्रयोग मिलता है :

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वेच खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिधो याति ब्राह्मणो ।। 2–
*   *   *
मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वेच सोत्थिये।
वेच्याध पच्चमं हन्त्वा अनिधो यानि ब्राह्मणो ।। 3–

बौद्ध धर्म की वज्रयान तथा सहजयान शाखाओं में भी ऐसे प्रयोग पाये जाते है :

1:– वह चलता है और वहीं भी चलता , दूर है और निकट भी है वह सबके भीतर भी है तथा बाहर भी है । वह ठहरा हुआ भी अन्य दौड़ने वालों से आगे निकल जाता है ।

(इशोपनिषद–मंत्र–5)

2:–माता–पिता को क्षत्रीय राजाओं तथा अनुचर सहित राष्ट्र को नष्ट करके ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।

(धम्मपद : पकिण्ण वग्गो, 5)

3:–माता–पिता, दो क्षत्रिय राजाओं तथा पाँचों व्याध्र को मारकर ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।

(धम्मपद : पकिण्णवग्गो,6)

मारि शासु नणन्द घरे शाली।
माअ महिआ कान्ह भइल कपाली।।1–
*   *   *
दुलि दुहि पिटा धरण न जाइ।
रुखेरतेन्तलि कुम्भिरे खाअ।।2–
*   *   *
बदल बिआऊल गाविआ बाँझे।
पिटा दुहिए तिना साँझे।।3–

गोरख नाथ की उक्ति भी यहाँ दृष्टव्य है :

डूंगरि मंछा जलि सुसा,पाणी मैं दौं लागा।
अरहट बहै तृसालवा सूलै काँटा भागा।।4–

1:– अर्थात घर में सास, ननद एवं साली को मारकर माँ को मारा और काण्हपा कपाली हो गया

(चर्चा पद–11)

2:– चर्चा पद–2

3:– अर्थात बेल ब्याता है और गाय बॉझ रहती है, और पिटा (पीठक) तीनों समय दुहा जाता है

(चर्चा पद–33)

4:– अर्थात पानी में अग्नि लगी हुई है, मछली पहाड़ पर है और खरगोश जल में है । प्यासों के लिये रहत बनने लगी है और शूल से निकल कर कॉटा नष्ट हो गया है ।

गोरखबानी (प्रयाग संस्करण), पृ. 112, पद–20

चींटी केरा नेत्र में , गज्येंद्र समाइला।
गावड़ी के मुख में , वाघला बिवाइला।। 1—

*   *   *

नाथ बोलै अमृत वाणी वरिषैगी कँवली भीजैगा पांणी।
गाडि पडरवा बाँधिले षूँटा, चलै दमांमां वाजि ले ऊँटा।।

*   *   *

नगरी को पांणी कूई आवै , उलटी चरचा गोरख गावै।। 2—

गोरख नाथ की वाणी का अन्य उदाहरण में कहा गया है कि गजेन्द्र चींटी के नेत्र में प्रवेश करता है । गाय के मुख में बाघिन ब्याती है :

चीटी केरा नेत्र में गजेन्द्र समाइला।
गावड़ी के मुख में वाघला बिवाइला।। 3—

एक अन्य आश्चर्य जनक उदाहरण भी दृष्टव्य है :

नाथ बोले अमृत वाणी, वरिषैगी कंवली भीजैगा पांणी।
गाड़ि पड़रवा बाँघिले षूटा चलै, दमांमां वाजि ले ऊटा ।
कउआ की डाली पीपल बासै, मूसा के सबद विलइयानासे ।
चले बटावा थाकी वाटे, सोवै डुकरिया ठौरे षाठ ।

1:— अर्थात गजेंद्र चींटी की आँख में प्रवेश करता है, बाघिन गाय के मुख में ब्याती है , और बाँझ बारह वर्ष की अवस्था में प्रसव करके निकम्मा हो जाता है।
गोरखबानी(प्रयाग) , पृ. 129, पद'34

2:— गोरख बानी , पृ. 141—2, पद—47

3:— गोरखबानी (पंयाग) पृ.—129, पद—34

ढूकिले कूकर भूकिले चोर तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।
मगरी परि चूल्हा धूंघाइ पौवड़हारा को रोटी खाइ ।
कामिनी जलै अगीठी तापै बहू विघाइ सासू जाइ ।
नगरी कौ पांणी कूई आवै, उलटी चरचा गौरष गावै ।। 1–

अन्य एक अद्‌भुत प्रसंग दृष्टव्य है :

डूंगरि मंछा जलि सुसा, पाणी में दौ लागा ।
अरहट बहै तूसालवां, सूलै काटा भागा ।।2–

जैन मुनियों ने भी इसी प्रकार की उलटी बातें कही है :

उब्बस बसिया जो करइ, बसिया करइ जु सुष्णु ।
बलि किज्जउ तसु जोइयहु, जासुण पाउण पुण्णु ।। 3–

1:– गोरखबानी (प्रयाग), पद 47, पृ. 141–2

2:– अर्थात पानी में आग लग गई पहाड़ पर मछली और जल में शशक छिप गया। प्यासों के लिये रहेट बहने लगी, और शूल (दर्द) से काँटा निकल कर भाग गया।

गोरखबानी (प्रयाग) पद–20, पृ. 112

3:– पाहुण दोहा (करंजा) 192, अर्थात जो ऊजडा उजड़ को बसाता है और जो बसे हुए को उजाड़ता है , है योगीः उस व्यक्ति की बलिहारी है , उसको न पाप होता है और न पुण्य ।

हठयोग प्रदीपिका में कहा है :

यत् किंचित्स्रवते चन्द्रादमृतं दिव्यरुपिणः ।
तत्सर्व ग्रसेत सूर्यः तेन पिण्डो जरायुतः ।। 1–

*   *   *

गंगायमुनयोर्मध्ये बालरण्डा तपस्विनी ।
बलात्कारेण गृहवीयात् तद्विष्णोः परम् पदम् ।।
इडा भगवती गंगा पिंगलां यमुना नदी ।
इडा पिंगलयोर्मध्ये बालरण्डा, तु कुण्डली ।। 2–

कबीर दादूदयाल, नानक, अखा आदि संतों के लिए भी उलटबाँसियों का प्रयोग अनिवार्य सा हो गया है ।

कबीर जी की कुछ उलटबाँसियाँ दृष्टव्य हैं :

उलटी गंगा समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मै व्यंब प्रकासै ।।
डाल ग'ह्यां थैं मूल न सूझै, मूल गह्यां फल पावा ।
बंबई उलटि शरप कौं लागी, धनणि महा रस खावा ।।
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहिर कछू न सूझै ।
उलटै घनकि पारधी मार्यो, यहु अचिरज कोइ बूझै ।।
औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, सूधा सूमर भरिया ।
जाकौ यहु जग घिण करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया ।।

1:– अर्थात तुम कहते हो, सूर्य प्रकाश और जीवन देता है ? बिल्कुल ग़लत है , वही तो मृत्यु का कारण है । चन्द्रमा से जो कुछ अमृत झरा करता है वही सूर्य ही चट कर जाता है –उसका मुँह बन्द कर देना योगी का परम् कर्तव्य है ।
(हठयोग प्रदीपिका, 3–76)

2:– हठयोग प्रदीपिका, 3–101,2

बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राष्या ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाष्या ।। 1–

अन्य स्थान पर वे कहते हैं :

मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि षाई ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई ।।
चींटी परबत ऊषण्यां, ले राख्यौ चौड़े ।
मुर्गा मिनकी सूं लड़ै, झल पांणी दौड़ै ।।
सूरही चूंषै बछतलि, बछा दूध उतारैं ।
तेसा नवल गुंणी भया, सारदूलहि मारै ।। 2–

अन्य पद में वे कहते हैं कि इस संसार में कोई ऐसा ज्ञानी है जो इस उलटे ज्ञान व्यापार को स्पष्ट कर सके । सहस्र दल कमल से अमृत झर रहा है, वही ज्योति स्वरुप ब्रह्म प्रकट हो रहा है जो संसार से आँख बन्द किये साधक को दिखता है । कुण्डलिनी की साधना ने पाँचों इन्द्रियों रुपी भुजंगनियों को चट कर लिया । गाय तुल्य सीधे साधक ने भ्रम के सिंह को काट–काट कर खा लिया । यह कर्म ऐसा ही है जैसे बकरी ने बघेरे को एवं हिरन ने चीते को खा डाला । जो माया जीव को अपने फंदे में फँसाये रहती थी ,उसी जीव ने साधना द्वारा माया को अपने कब्जे –नियंत्रण में कर लिया – इस प्रकार बटेर बाज़ से जीत गई । यह उसी भाँति है जैसे चूहा बिल्ली को (माया) तथा बिल्ली ने श्वान को खा लिया हो।

1:– कबीर ग्रंथावली, पद–162, राग रामकली, सं. बाबू श्यामसुंदर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

2:– वही, पद–161

है कोई जगत में गुर ग्यांनी , उलटि बेद बूझै ।
पांणी में अगनि जरै ,अँधेरैं कौ सूझै ।।
एकनि दादुरि खाये पंच भवंगा ।
गाइ नाहर खायी काटि अंगा ।।
बकरी बिधार खायौं , हरनि खायौ चीता ।
कागिल गर फांदियां , बटेरै बाज जीता ।।
मूसै मंजार खायौं, स्यालि खायौ स्वांनां ।
आदि कौं आदेस करत कहै कबीर ग्यांनां ।1–

* * *

बांझ का पूत बाप बिन जाया, बिन पांऊं तरबरि चढ़िआ ।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया , बिन षंड़ै संग्राम जुड़िया ।।
बीज बिन अंकुर पेड़ बिन तरबर, बिन साषा ततवर फलिया ।।
रुप बिन नारी , पुहुप बिन परमल, बिन नीरै सरवर भरिया ।।
देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा , बिन पांषां भवर बिलंबिया ।
सूरा होई सु परम पद पावै , कीट पतंग होइ सब ज़रिया ।। 2–

* * *

एक अचंबा देख रे भाई , ठाढ़ा सिंध चरावै गाई ।।
पहलै पूत पीछै भई माई , चेला के गुर लागै पाई ।
जल की मछली तरवर ब्याई , पकड़ि बिलार मुरगै खाई ।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई , कुत्ता कूं लै गई बिलाई ।। 3–

1:– वही, पद–160

2:– वही, पद–158

3:– कबीर ग्रंथावली, पद'11, राग गौड़ी, सं. बाबू श्यामसुंदर दास, का. नागरी प्रचारिणी सभा

अन्य स्थान पर कबीर जी कहते हैं कि संसार में कैसा विपरीत तमाशा है ! अनहद नाद की दुराशा में फँस कर ये योगी वहाँ चले गये जहाँ शून्य है , जहाँ कुछ भी नही है ! निरालम्ब शून्य में भटकने वाले इस जीव ने किसी ऐसे लाज बचावन हारे की परवाह तक न की , उसका हाथ भी छोड़ दिया और खुद बेहाथ हो गया ! संसार संशय का शिकार है , काल अहेरी सबको मार रहा है । अतः है मनुष्यों , राम नाम का सुमिरन करो । काल ने चुटिया पकड़ रखी है , कौन जाने कब और कहाँ दे मारेगा !

अनहद – अनुभव की करि आसा ।
देखौं यह विपरीत तमासा !
इहैं तमासा देखहु (रे) भाई !
जहवाँ सुन्न तहाँ चलि जाई ।
सुन्नहि बाँध सुन्नहि गयऊ ।
हाथा छोड़ि बेहाथा भयऊ ।।
संसय सावज सब संसारा ।
काल–अहेरी साँझ –सकारा ।।
सूमिरन करहू राम का , काल गहे कर केस ।
ना जानौ कब मारिहैं, का घर का परदेस ।। 1–

कबीर के समान दादू ने भी उलटबाँसिओं का प्रयोग किया है । दादू दयाल की वाणी में उलटबाँसियाँ की संख्या कम है ।

दादू दयाल कहते हैं कि मुझे आश्चर्य होता है कि चींटीं ने (अर्थात जीव ने गुरु की कृपा से) हस्ती रुपी मन को खा डाला । जो चतुर (मन) था वह तो हार मानकर बैठ गया और भोली सुरति ने उसे बहका लिया । जो मन

1:– बीजक, रमैनी–19

चंचलता छोड़कर पंगुल हो गया वहीं ऊँचे पद पर पहुँच गया । नन्हा जीव गुरु की कृपा का बल पाकर इतना विराट हो गया कि अब वह त्रिकुटी में भी नही समा पाता । इस रहस्य को वही जानता है जिसमें अर्न्तदृष्टि है ।

मूँ नै येह अचंभौ थाये।
कीड़ीये हस्ती विडोरयो , तेन्हैं बैंठी पाये।
जांण हुतौ ते बैठौं, हरि ,अजांण तेन्हैं ता चाहै ।
पांगुलौ उजावा लाग्यौ, तेन्है कर को साहै ।।
नान्हौ हुतौ ते मोटौ थायौ , गगन मंडल नहिं भाये ।
मोटेरौ बिस्तार मर्णी, जै, तेतौं कन्हे जाये ।।
ते जाणै जे निरषी जोवै , षोजी नै बली माहैं ।
दादू तेन्हौं मर्म न जाणै , जे जिम्या विहूँणों गाये।। 1–

दादू जी का एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं :–

तरवर साखा मूल बिन , धरती पर नांहीं ।
अविचल अमर अनंत फल , सो दादू खांही।।
तरवर साखा मूल बिन, भर अंवर न्यारा।
अविनासी आनन्द फल , दादू का प्यारा।।
तरवर साखा मूल बिन , रज बीरज रहिता।
अजर अमर अतीत फल , सो दादू गहिता।।
तरवर साखा मूल बिन , उतपति परलै नाहिं।
रहिता रमिता राम फल, दादू नैनहूँ मांहिं।। 2–

1:– दादू वाणी, चन्द्रिका प्रसाद, पद 213, पृ. 448

2:– दादू वाणी, मंगल दास, पृ. 106'7

संत तुलसी साहब (हाथ रस वाले) ने भी 'उलटी रीति',' उल्टा शब्द', 'उलटी चाल', 'उलटवास' आदि शब्दों का प्रयोग किया है :–

उलटावास संतन ने भाखी । जाकी समझ सूर कोई राखी।
सुलटी को उलटी कर बूझा। उलटी सुलटी समझ न सूझा।
अब या को इक शब्द सुनाऊँ । उलटि सुलट वोहिया दिखाऊ ।1

अन्य स्थान पर उन्होंने इस प्रकार की उलटी पुलटी बातें कहकर आध्यात्मिक तत्वों को समझाने का प्रयत्न किया है । उनका इस प्रकार का एक उदाहरण देखने योग्य है :

देखा अचरज भाई रे , कहूँ कहा न जाई ।
घी घर ब्याह बाप ने कीन्हा , माता पुत्र विहाही।
भैया भाव ब्याह बहिनी संग , उलटी रीति चलाई ।2–

राधास्वामी मत के प्रर्वतक श्री शिवदयाल जी ने बहुत सी उलटबाँसियों की रचना की है :

गुरु अचरज खेल दिखाया। स्रुत नाम रतन घट पाया।
चींटीं चढ़ गगन समाई। पिंगुल चढ़ पर्वत आई।।

1:– पलटू साहब की बानी, (बे. प्रे.) प्रथम भाग, पृ. 741

2:– तुलसी साहब (हाथरस वाले) की शब्दावली और जीवन चरित्र (बे. प्रेस इलाहाबाद) , पृ. 136, शब्द–1

गूंगा सब राग सुनावै । अन्धा सब रुप निहारे ।।
मक्खी ने मकड़ी खाई । भुनगे न धरन तुलाई ।
धरती सब खिल्लत खाई । जंगल में बस्ती ब्याही ।।
मूसी से बिल्ली भागी । पानी में अग्नी लागी ।
कउआ धुन मधुरी बोले । मेंढ़क अब सागर तोल ।।
मूरख से चतुरा हारा । धरती में गगन पुकारा ।।
राधास्वामी उल्टी गाई । उल्लू को सूर दिखाई ।। 1—

1:— सारवचन, भाग—2, पृ. 450—2